ISSN: 0974-5823 Vol. 7 (Special Issue 5, April-May 2022)
International Journal of Mechanical Engineering

मध्यकालीन निर्गुणमार्गी संत कबीर दास के काव्य पर आचार्य रजनीश (ओशो) का दृष्टिकोण

डॉ. शाहिद हुसैन
सहायक प्राध्यापक
हिन्दी विभाग
डॉ. सी. वी रामन विश्वविद्यालय, करगीरोड कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

ओशो ने मध्य काल के लगभग सभी निर्गुण संतों पर अपनी अमृतवाणी दी है, किंतु वे कबीर को अध्यात्माकाश का चमकता तारा मानते हैं। मध्य काल के जनमानस पर तत्कालीन संतों एवं उनके वचनों (काव्यों) का स्पष्ट प्रभाव ज्ञात होता है। मध्यकालीन सभी संतो में कबीर दास की अमिट छाप रही है क्योंकि उन्होंने न केवल अपनी अल्लढ और बेबाक वाणी से सामाजिक ठेकेदारों को लताड़ा बल्कि आध्यात्मिक शिखर में पहुंचने वाली मार्ग में आने वाली अडचनों एवं कठिनाइयों तथा शिखर पर मिलने वाले आनंद को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया और अपनी सपाट बयानी भाषा में उसे व्यक्त किया है। ओशो मानते हैं कि कबीर जैसा अनपढ व्यक्ति यदि वहां तक पहुंच सकता है, तो कोई भी पहुंच सकता है। इसका अर्थ हुआ कि ईश्वर को प्राप्त करने का कोई भी मापदंड ज्ञानी, सुसंस्कृत या धनी होना नही है। अपनी पुस्तक 'सुनो भई साधो' में वे कहते हैं कि कबीर अनूठे हैं और प्रत्येक के लिए उनके द्वारा आशा का द्वार खुलता है। वह इसलिए क्योंकि उनसे ज्यादा साधारण आदमी खोजना कठिन है, और अगर कबीर पहुंच सकते हैं तो सभी पहुंच सकते हैं। कबीर तो निपट गंवार हैं, इसलिए गवार के लिए भी आशा है। वे बे पढ़े लिखे हैं, इसलिए पढ़े लिखे होने से सत्य का कोई संबंध नहीं। जाति पाति का कोई ठिकाना नहीं कबीर की, शायद मुसलमान के घर पैदा हुए, हिंदू के घर बड़े हुए। इसलिए जाति पाति से परमात्मा का कुछ लेना देना नहीं है। कबीर न धनी हैं, न ज्ञानी हैं, न समादृत हैं, न शिक्षित हैं, न सुसंस्कृत हैं, कबीर जैसा व्यक्ति अगर परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया, तो तुम्हें भी निराश होने की कोई भी जरूरत नहीं। इसलिए कबीर में बड़ी आशा है।

''कस्तूरी कुंडलि बसै मृग ढूंढै बन मांहि।
ऐसे घटि घटि राम हैं, दुनिया देखै नाहिं।।''[1]

कबीर दास जी संतमत के आदि कवि माने जाते हैं। उनका महत्व जितना अधिक है उतना ही विवादास्पद उनका प्रामाणिक जीवन चरित् भी है। अब तक जिन भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने कबीर दास के जीवन पर विचार किया है उन्होंने मुख्यतः चार प्रकार की सामग्री का उपयोग किया है – 1. अंतः साक्ष्य, 2. सांप्रदायिक सामग्री, 3. प्राचीन ग्रंथ और 4. विचारकों के निष्कर्ष। अंतः साक्ष्य के रूप में उन्होंने काजी द्वारा अपने ऊपर हाथी चलाने तथा लोहे की जंजीरों से बांधकर गंगा में डुबाने की घटना का वर्णन किया है। उनके आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि कबीर सिकंदर लोदो के समकालीन थे, जिसका समय सन सन 1488 से 1517 ईसवी है। दूसरा अंतर साक्ष्य कबीर द्वारा जयदेव और नामदेव के नामों का उल्लेख है जो कबीर के समय को तेरहवीं शताब्दी के अंत अथवा चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में होना प्रमाणित करता है। सांप्रदायिक सामग्री में श्री पीपा की वाणी, धर्मदास कृत भवतारण, कबीर–गोरख गुष्ट, कबीर चरित्र बोध, भक्तमाल और कबीर परिचई का विशेष महत्व है। कबीर चरित्र बोध में संवत 1455 विक्रम उनका जन्म काल माना गया है। इन संप्रदायिक ग्रंथों का साक्ष्य स्वीकार करने पर कबीर का जन्म सन 1398 ईसवी में प्रमाणित होता है। आधुनिक विचारकों में कबीर के जन्म काल को लेकर पर्याप्त मतभेद है। इनमें से कुछ विचारकों के मतानुसार कबीर का जन्म काल इस प्रकार है, ब्रील–1490, फर्कूहर–1400 से 1518ई, हंटर–1380 से 1420, मेकालिफ–1398 से 1518 तथा वेस्ट कार्ट, स्मिथ एवं मण्डारकर–1440 से 1518। संत संप्रदाय से जो विवरण प्राप्त हुआ है उसके अनुसार –

''चौदह सौ पचपन साल भए, चंद्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए ।।
घन गरजें दामिनी दमके बूँद बरष झर लाग गए।
लहर तलाब में कमल खिले तह कबीर भानु प्रगट भए।।''[2]

अर्थात कबीर का जन्म संवत 1455 (सन 1398) ईसवी के ज्येष्ठ पूर्णिमा को हुआ पर गणना करने पर इस वर्ष की ज्येष्ठ पूर्णिमा का सोमवार नहीं पड़ता। (सन 1399 की पूर्णिमा को ही सोमवार पड़ता है) इसलिए अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि कबीर का जन्म 1456 (सन 1399 ई.) में ही हआ। डॉक्टर नगेंद्र 'कबीर चरित्र बोध' के माध्यम से उनका आविर्भाव काल 1455 विक्रम संवत को मानते हैं। तो

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संवत 1456 अर्थात 1399 ईस्वी में उनका जन्म माना है। हिन्दी संत कवियों की अविच्छिन्न धारा में कबीर का स्थान अद्वितीय है। संत परंपरा न केवल कबीर से आरंभ होती है वरन परवर्ती संतों में भी इसका प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। मध्यकालीन संतों में जितनी चर्चा कबीर की हुई है और जितनी ख्याति उन्हें मिली इतनी गोस्वामी तुलसीदास को छोड़कर किसी भी अन्य संत को नहीं मिली। कदाचित इसका एक प्रमुख कारण उनका सीधे जमीन से उठना है। कबीर के आविर्भाव के समय तक इस्लामी शासन एवं मजहब की जड़ भारत में गहराई तक पहुंच चुकी थी। अपने समकालीन मुगल शासक सिकंदर लोदी के अत्याचार से संत कबोर पीड़ित जरूर हुए किंतु आत्मा की आवाज को मुखरित होने से न रोक सके। इसका वर्णन विस्तार पूर्वक एवं मार्मिक ढंग से अनंत दास ने अपनी कृति कबीर परिचई में किया है। प्रसिद्ध है कि संत कबीर स्वामी रामानंद के सुविख्यात शिष्य थे। भक्तमाल में रामानंद के प्रमुख शिष्यों का उल्लेख करते हुए कबीर को विशेष स्थान दिया गया है। जनश्रुति के अनुसार स्वामी रामानंद ने काशी के एक भक्त ब्राह्मण की विधवा कन्या को पुत्रवती होने का आशीर्वाद भूलवश दे दिया। परिणाम स्वरूप उत्पन्न बालक को विधवा ब्राह्मणी सामाजिक भय से लहरतारा के ताल के पास फेंक आई, जिसका का लालन–पालन नीरु नामक जुलाहे के घर हुआ जिसने बालक को ताल के पास से अपने घर उठाकर ले आया था। यही बालक आगे चलकर संत कबीर दास के रूप में प्रसिद्ध हुआ। 'जाति जुलाहा नाम कबीर' जैसे उल्लेखों से स्पष्ट है कि जाति पाति के कटु आलोचक कबीर ने अपने का जुलाहा क्यों कहा। जनश्रुतियों के अनुसार कबीर की पत्नी का नाम लोई था और उनके दो संतान थे। पुत्र कमाल और पुत्र कमाली, कमाल के बहुत प्रतिभावान होने का वर्णन भी यदा–कदा मिलता है। कबीर दास भक्ति मार्ग पर उन्मुख थे। बड़े होने पर उनकी एक ही प्यास थी 'गुरु नाम' की क्योंकि इसके बिना ज्ञान का अवतरण सर्वथा अपूर्ण था। यह बात उन्हें बखूबी समझ में आ गई थो। संत परंपरा में अपनी महती लेखनी की अपूर्व योगदान देने वाले पंडित परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार – ''कबीर साहब के दीक्षा गुरु स्वामी रामानंद समझे जाते हैं और उन्हें गुरु भाई सेन, पीपा, रैदास और धन्ना संत माने जाते हैं किंतु इस बात के लिए प्रत्यक्ष प्रमाणों का अभाव दोखता है।''[3] कबीर का निधन काल भी उनके आविर्भाव काल के समान ही अनिश्चित एवं रहस्यमय बना रहा। भक्तमाल के टीकाकार प्रिया दास के अनुसार उनका देहांत मगहर में 1492 ई. में हुआ, इस संबंध में एक जनश्रुति भी प्रचलित है –

''संवत पंद्रह सौ पछत्तरा कियो मगहर को गौन।
माघ सुदो एकादशी, रलो पौन में पौन।।''[4]

18वीं सदी के अंतिम के वर्षों में औघोगिक क्रांति की शुरूवात हई। वैज्ञानिकीकरण, मशीनीकरण, पाश्चात्यायी–करण की संकल्पना ने मानव के दिलोदिमाग को तनाव, अशांति एवं निराशा से भर दिया। ऐसे लोमहर्षक वातावरण की पृष्ठभूमि में आचार्य रजनीश (ओशो) का आगमन एक क्रांतिकारी घटना थी।

ओशो ने अपने सत्य के अनुभव को अभिव्यक्त करने के लिये संत काव्य को माध्यम बनाया। 80 के दशक में रजनीश (ओशो) ने इन काव्यों को संतत्व की उसी ऊँचाई पर पहुँचा कर पुनः वही अर्थ किया जो इनका मूलार्थ था। जब संतो के काव्य पर ओशे की अभिनव दृष्टि पड़ती है तब यह माणि–कांचन संयोग देखने ही बनता है। आधुनिक मनुष्य और संतो के बीच ओशो एक तारतमय बनाते हुए नजर आते हैं। इस सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि जब कोई संत साहित्य की शैली का अंगीकार विचाराभिव्यक्ति के लिए अंगीकार करता है, तो वह साहित्य उत्तम साहित्य की पंक्ति में स्थान प्राप्त कर लेता है। ओशो का साहित्य वर्तमान समय में इस परिभाषा पर खरा उतरता है। साहित्य समीक्षा के शास्त्रीय मान दंडो पर संभवतः उनका साहित्य सौ प्रतिशत खरा न उतरता हो, किंतु सरल – सहज भाषा में काव्य के प्रतीकों और मिथकों का सुंदर परिपाक करके उन्होंन साहित्य के नए प्रतिमान अवश्य गढ़ दिए हैं। यही कारण है कि आज के आधुनिक दौर में एक बहुत बड़े बुद्धिजीवी वर्ग के लिए ओशो साहित्य जीवन शैली का आधार हैं। ओशो की कुल 500 पुस्तकों में से 33 संतों पर 56 पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनमें से 20 मध्यकालीन संत हैं। इन मध्यकालीन संतों पर उनकी 38 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमे उन्होंनें अपना अभिनव दृष्टिकोंण प्रस्तुत किया है।

ओशो ने मध्य काल के लगभग सभी निर्गुण संतों पर अपनी अमृतवाणी दी है, किंतु वे कबीर को अध्यात्माकाश का चमकता तारा मानते हैं। मध्य काल के जनमानस पर तत्कालीन संतों एवं उनके वचनों (काव्यों) का स्पष्ट प्रभाव ज्ञात होता है। मध्यकालीन सभी संतो में कबीर दास की अमिट छाप रही है क्योंकि उन्होंने न केवल अपनी अल्लढ और बेबाक वाणी से सामाजिक ठेकेदारों को लताड़ा बल्कि आध्यात्मिक शिखर में पहुंचने वाली मार्ग में आने वाली अडचनों एवं कठिनाइयों तथा शिखर पर मिलने वाले आनंद को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया और अपनी सपाट बयानी भाषा में उसे व्यक्त किया है। उनके काव्य की महत्ता तथा उनकी लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण यह भी है कि भारत के दक्षिणी छोर पर भक्ति को प्रारंभ करने का श्रेय रामानंद जी के बाद उन्हीं को जाता है। इस बारे में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है– ''द्विवेदी जी कहते हैं कि सच पूछा जाए तो रामानंद मध्ययुग की समग्र स्वाधीन चिंतन के गुरु थे। यह प्रसिद्ध है कि भक्ति द्रविड़ देश में ही उत्पन्न हुई थी, एवं उत्तर भारत में उसे रामानंद ले आए और कबीर दास जी ने उसे सप्तदीप और नो खंड में प्रकट कर दिया–

''भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद।
प्रगट किया कबीर ने सप्त दीप नौ खंड।''[5]

ओशो मानते हैं कि कबीर जैसा अनपढ व्यक्ति यदि वहां तक पहुंच सकता है, तो कोई भी पहुंच सकता है। इसका अर्थ हुआ कि ईश्वर को प्राप्त करने का कोई भी मापदंड ज्ञानी, सुसंस्कृत या धनी होना नही है। ''अपनी पुस्तक 'सुनो भई साधो' में वे कहते हैं कि कबीर अनूठे हैं और प्रत्येक के लिए

उनके द्वारा आशा का द्वार खुलता है। वह इसलिए क्योंकि उनसे ज्यादा साधारण आदमी खोजना कठिन है, और अगर कबीर पहुंच सकते हैं तो सभी पहुंच सकते हैं। कबीर तो निपट गंवार हैं, इसलिए गवार के लिए भी आशा है। वे बे पढ़े लिखे हैं, इसलिए पढ़े लिखे होने से सत्य का कोई संबंध नहीं। जाति पाति का कोई ठिकाना नहीं कबीर की, शायद मुसलमान के घर पैदा हुए, हिंदू के घर बड़े हुए। इसलिए जाति पाति से परमात्मा का कुछ लेना देना नहीं है। कबीर न धनी हैं, न ज्ञानी हैं, न समादृत हैं, न शिक्षित हैं, न सुसंस्कृत हैं, कबीर जैसा व्यक्ति अगर परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया, तो तुम्हें भी निराश होने की कोई भी जरूरत नहीं। इसलिए कबीर में बड़ी आशा है।''[6]

ओशो ने एक ओर जहां संत कबीर के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते है, वहीं दूसरी ओर उनके कृतित्व पर भी अपनी ओजस्वी दृष्टि प्रदान करते हैं। उन्होंने कहा है– ''कबीर के संबंध में पहली बात समझ लेनी जरूरी है। वहां पांडित्य का कोई अर्थ नहीं है। कबीर खुद भो पंडित नहीं है। कहा है कबीर ने– 'मसि कागद छ्यो नहीं, कलम गहयो नहिं हाथ'। कागज कलम से उनकी कोई पहचान नहीं है। 'लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात' जा देखा है, वही कहा है कबीर ने। जो चखा ह, वही कहा है, उधार नहीं है।''[7] मध्यकालीन सभी संतों में ओशो को सर्वाधिक प्रिय कबीर ही थे। वे उनकी सपाट बयानी को सिर आंखों पर रखते थे क्योंकि ओशो भी आखिरकार सपाट बयानी थे। जो तथ्य था, उसे कभी बोलने में घबराते नहीं थे। कबीर ने तत्कालीन सामाजिक आडंबरों पर खुलेआम और बेबाक प्रहार किया था और उन्होंने अपने समय के समाज की व्यवस्था पर कुठाराघात किया। कदाचित यही कबीर और ओशो के सामीप्य का बड़ा कारण रहा। ओशो अपनी पुस्तक 'मरौ हे जोगी मरा' में कहते हैं कि ''महाकवि सुमित्रानंदन पंत ने मुझसे एक बार पूछा कि भारत के धर्माकाश में मेरी दृष्टि में, वे कौन 12 लोग हैं, जो सबसे चमकते हुए सितारे हैं? मैंने उन्हें यह सूची दीः कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध, महावीर, नागार्जुन, शंकर, गोरख, कबीर, नानक, मीरा, रामकृष्ण, कृष्णमूर्ति।''[8]

कबीर के काव्य पर प्रकाश डालते हुए ओशो ने यह सिद्ध किया है कि उनके काव्य में क्रांति की नई ज्वाला है, नई चमक है, जो प्यासे को अपनी ओर खींच लेगा। वस्तुतः साहित्य के संसार में यदि ओशो का कोई जवाब नहीं है, तो कबीर भी बेमिसाल ह। दोनों की जोड़ी अनूठी है। ओशो ने कबीर के प्रभावी व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला ही है, उनके कृतित्व पर भी उनकी अद्वितीय व्याख्या है। जैसा कि इस अध्याय के प्रारंभ में ही स्पष्ट कर दिया गया है कि मध्यकालीन काव्य पर उन्होंने आधुनिक एवं नया दृष्टिकोण दिया है। इसी संदर्भ में यहा यह भी उल्लेख करना समीचीन होगा कि कबीर दास जी के दोहों का भी ओशो ने नया अर्थ प्रस्तुत किया है, जो संभवतः इससे पूर्व किसी ने नहीं किया। प्रस्तुत हैं कुछ उदाहरण जिनसे यह बात स्पष्ट हो जाएगी। कबीर दास जी का यह दोहा देखिए –

''पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।''[9]

इस दोहे में संत कबीर दास ने कहना चाहा है कि शास्त्रों को पढ़ने से कोई पंडित नहीं हो जाता अर्थात वेद या शास्त्रों को रट लेने मात्र से पांडित्य का अवतरण नहीं होता बल्कि कोई यदि ढाई अक्षर के 'प्रेम' शब्द को समझ ले तो वह बड़े से बड़ा पंडित हो जाता है। 'प्रेम' शब्द में संयुक्त रूप से कुल ढाई वर्ण हैं–'प' 'र्' 'म'। इस दोहे का अर्थ करते हुए आमतौर पर 'प्रेम' शब्द पर जोर दिया जाता है, किंतु ओशो ने 'ढाई' शब्द पर बल दिया है और यह सिद्ध किया है कि प्रेम को ढाई अक्षर क्यों कहा गया है? इस तथ्य को आशो इस तरह उद्घाटित करते हुए कहते हैं कि ''ढाई अक्षर हिन्दी में जो शब्द है– 'प्रेम' उसमें ढाई अक्षर हैं, लेकिन कबीर का मतलब गहरा है। जब भी कोई व्यक्ति किसी के 'प्रेम' में गिरता है तो वहां ढाई अक्षर प्रेम क पूरे होते हैं। एक तो प्रेम करने वाला– एक, जिसको प्रेम करता है वह–दो, और दोनों के बीच में कुछ है अज्ञात– वह है ढाई। उसे क्यों कबीर आधा कहते हैं? ढाई क्यों? तीन कह सकते हैं। आधा कहने का कारण है, बड़ा मधुर कारण है। कबीर कहते हैं कि प्रेम कभी पूरा नहीं होता, कितना ही पूरा हो जाए। तुम कभी तृप्त नहीं होते। कभी ऐसा नहीं लगता कि बस आ गई पूर्ति, संतुष्ट हो गए। प्रेम कितना ही हो जाए, अधूरा ही बना रहता है। वह परमात्मा जैसा है, कितना ही विकसित हो जाए, पूर्ण से पूर्णतर होता जाता है, और फिर भी विकास जारी है। जैसे प्रेम का जो अधूरापन है, वह उसकी शाश्वतता है।''[10]

कबीर दास का एक बहुत ही प्रसिद्ध दोहा हैः

''प्रेम ना बाड़ी उपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचे, सीस देय लै जाय।''[11]

ओशो इस दोहे का अर्थ करते हुए कहते हैं ''प्रेम न बाड़ी उपजै– बगीचे में प्रेम नहीं पैदा होता, 'प्रेम न हाट बिकाय'– न बाजार में उसकी कोई बिक्री होती है। 'राजा परजा जेहि रूचे, सीस देय लै जाए'– और प्रेम के जगत में राजा और प्रजा का भी कोई भेद नहीं है, गरीब अमीर का कोई सवाल नहीं है, भिखारी और सम्राट वहां बराबर हैं। सूत्र एक है– 'सीस देय लै जाए' जिसको भी प्रेम चाहिए हा, उसको अपने को खोना पड़ेगा– अपने अहंकार को, अपने दंभ को, मैं भाव को– वही सीस है, सिर खोना पड़ेगा और जब तक तुम सिर खोने को राजी नहीं हो, तब तक तुममें प्रेम पैदा नहीं होगा।''[12] हम जानते ह कि प्रायः इस दोहे के अंतिम अंश 'सीस देय लै जाए' में सीस देने का अभिधा अर्थ किया जाता है कि प्रेम की उपलब्धि के लिए या प्रेम तत्व की प्राप्ति के लिए राजा रंक में कोई भेद नहीं होता और प्रेम उसी को प्राप्त होता है, जो अपना सब को समर्पित करने के लिए तैयार हो जाता है, यहां तक कि यदि साधक अपना सिर काटने के लिए भी तैयार है, तो उसे प्रेम मिल जाता है। आमतौर पर 'सीस

दय' का अर्थ 'सिर कटा देने के साहस' से किया जाता है क्योंकि सिर कटा देना बहुत आसान है अपेक्षाकृत 'अहंकार' खोने से। यदि प्रेम की उपलब्धि के लिए सिर कटाना ही शर्त हो तो यह बहुत सस्ता सौदा है और इतने सस्ते सौदे की बात कबीर जैसे पहुंचे हुए संत नहीं करेंगे। अहंकार को खोना बहुत कठिन है क्योंकि उसी के बलबूते पर हम संसार में अपना अस्तित्व जमाए हुए हैं, हम अपने अहं के इर्द–गिर्द ही अपना वजूद खोजते हैं और फिर मोटे तौर पर, जो आंखों से साफ दिखाई पड़ता है, ऐसे अहंकार को खोना आसान है, किंतु सूक्ष्म अहंकार को खोना बहुत ही कठिन है। 'राजा परजा जेहि रुचे, सीस देय लै जाय।' ओशो इस पंक्ति में 'सीस' का अहंकार के अतिरिक्त एक दूसरा नया अर्थ 'विचार' सिद्ध करते ह। ओशो मानते हैं कि मनुष्य हर समय विचारों से उलझा रहता है और उसकी अस्सी प्रतिशत ऊर्जा इसी उधेड़बुन में चली जाती है। ओशो के ही शब्दों में– ''शीश का एक तो अर्थ है 'अहकार' और दूसरा अर्थ है 'विचार'। क्योंकि तुम्हारे सिर में सारे विचारों का संगह है। तुम सोचते ही रहते हो। संगत–असंगत, अनर्गल विचारों की भीड़ तुम्हारे मन में चलती रहती है। इस विचारों की अतिशय भीड़ के कारण तुम्हारी सारी ऊर्जा, सारी शक्ति खो जाती है, प्रेम करने को कुछ बचता नहीं है। वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि अगर तुम एक घंटा जाकर खेत में कुदाली लेकर गड्ढा खोदो तो जितनी शक्ति समाप्त होती है, 15 मिनट विचार करने में, चिंता करने में ही उतनी शक्ति समाप्त होती है। चौगुनी, शरीर के श्रम से, मन के श्रम में समाप्त होती है।''[13] इसलिए ओशो के अनुसार विचारों के समाप्त होते ही सही अथा में प्रेम उपलब्ध हो जाता है।

ओशो अपने द्वारा दिए गए दोनों नए अर्थों को अंत में मिला देते हैं और निष्कर्ष रूप में व्यक्त करते हुए कहते हैं– ''जब तक तुम सिर को न गिरा दोगे, विचारों को न गिरा दोगे, तब तक तुम्हारे हृदय में मरुस्थल रहेगा, जल क स्रोत वहां तक न पहुंच पाएंगे। वहां पड़ा है बीज प्रेम का, जल स्त्रोत वहां तक पहुंचे तो ही प्रेम अंकुरित होगा। शीश देने को ठीक से समझ लेना। विचार और अहंकार दोनो छूट जाएं तो तुम्हारा सिर गिर गया। अब प्रेम की संभावना खुली है, अब तुमने प्रेम के बीच की बाधा हटा दी है। तुम्हारी खोपड़ी के अतिरिक्त और कोई भी बाधा नहीं है।''[14]

संत कबीर को पुस्तक ज्ञान नहीं के बराबर था परंतु परिस्थितियों ने उन्हें जीवन के गंभीर एवं विशाल अध्ययन के लिए उत्कृष्ट प्रेरणा दी। उन्होंने कहा है 'मसि कागद छुयो नहीं कलम गहि नहीं हाथ' लेकिन कहा जाता है कि ''संवत 1521 में उनके शिष्य धर्मदास ने कबीर वचनों को सुरक्षित किया था।''[15] ''किंतु बीजक की अभी तक न तो कोई प्राचीन प्रमाणित हस्तलिखित प्रति मिली है, न धर्मदास का ही जीवन काल निश्चित रूप से आज तक जाना जा सका। ज्ञातव्य सूत्रों के अनुसार तत्कालीन समय में अर्थात जब धर्मदास ने कबीर के पदों को संग्रहित किया था, तब तक कबीर की अवस्था 64 वर्ष की हो चुकी थी।''[16] उन्होंने सिर्फ प्रेम का अंक पढ़ा था और उसे जीवन में उतारा था, यही उनकी मधुर अभिव्यक्ति थी। संत कबीर ने जो कुछ पाया, वह उनके जीवन का गहरा अनुभव था। उन्होंने

देशाटन किया। अपने विवेक, अन्तर्ज्ञान तथा सारग्रही बुद्धि से अपनी विचारधारा की मधुर अभिव्यक्ति की। कबीर की जो भी रचनाएं हैं, वह हिंदी साहित्य का महत्वपूर्ण अंश है। ओशो उपरोक्त उदाहरणों के जैसे ही कबीर के दोहों का अनेकानेक नया अर्थ प्रस्तुत किया है। नया अर्थ से तात्पर्य 'मूल अर्थ' है, जो उस दोहे को गुणवत्ता प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम, (2015) संत काव्य, किताब महल पब्लिशर्स दिल्ली, पृष्ठ–109
2. दास, श्याम सुंदर, (2014) कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ–16
3. चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम, (2015) संत काव्य, किताब महल पब्लिशर्स दिल्ली, पृष्ठ–88
4. डॉ. नगेंद्र, (2009) हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स नोएडा, पृष्ठ–119
5. द्ववेदी, आचार्य हजारी प्रसाद, (1948) हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर
6. ओशो, (2014) सुनो भई साधो, ओशो मीडिया इंटरनैशनल पुणे, पृष्ठ– 3
7. ओशो, (2016) कहै कबीर मैं पूरा पाया, ओशो मीडिया इंटरनैशनल पुणे, पृष्ठ– 5
8. ओशो, (2016) मरौ हे जोगी मरौ, ओशो मीडिया इंटरनैशनल पुणे, पृष्ठ– 3
9. ओशो, (2014) गूंगे केरी सरकरा, ओशो मीडिया इंटरनैशनल पुणे, पृष्ठ– 2
10. ओशो, (2014) गूंगे केरी सरकरा, ओशो मीडिया इंटरनैशनल पुणे, पृष्ठ– 16
11. ओशो, (2014) गूंगे केरी सरकरा, ओशो मीडिया इंटरनैशनल पुणे, पृष्ठ– 2
12. ओशो, (2014) गूंगे केरी सरकरा, ओशो मीडिया इंटरनैशनल पुणे, पृष्ठ– 11
13. ओशो, (2014) गूंगे केरी सरकरा, ओशो मीडिया इंटरनैशनल पुणे, पृष्ठ– 14,15
14. ओशो, (2014) गूंगे केरी सरकरा, ओशो मीडिया इंटरनैशनल पुणे, पृष्ठ– 15
15. चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम, (2015) संत काव्य, किताब महल पब्लिशर्स दिल्ली, पृष्ठ–89
16. सिंह, डॉ. त्रिभुवन, (1968) हिन्दी साहित्य : एक परिचय, हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी, पृष्ठ–40